ISSN 0973-8541, HUMANITIES AND DEVELOPMENT, VOL.18, NO.1, JAN-JUNE,2023 /138

मुसहर समुदाय का धार्मिक विश्वास एवं कृत्य

– वंदना पाण्डेय
शोधछात्रा– डॉ0 राम मनोहर लोहिया अवध यूनिवर्सिटी, अयोध्या

मानव समाज में धार्मिक विश्वास इतने सार्व भौमिक, स्थाई और व्यापक हैं कि बिना इसके स्पष्टीकरण के हम समाज को सम्यक रुप में नहीं समझ सकते। विश्व के सभी धर्मग्रन्थों का अवलोकन करने से ऐसा प्रमाणित होता है कि धर्मों की रचना पारलौकिक के प्रति मानसिक अभिवृत्ति से होती है। इस अभिवृत्ति की सर्वाधिक व्याप्त अभिव्यक्ति विश्वासों एवं कर्मकाण्डों के रुप में होती है। इनमें से विश्वासों को भ्रमवश मिथक(मिथ्स) भी कहा जाता रहा है। जिन्हें हम मिथक कहते हैं, वे वस्तुतः लोगों के अपने पूर्वजों के बारे में विश्वास होते हैं, और इसीलिए इन्हें धार्मिक विश्वास या विश्वास भी कह दिया जाता है। विश्वास और कर्मकाण्ड सभी आदिम या आधुनिक में पाये जाते हैं। कर्मकाण्ड का तात्पर्य कतिपय क्रियाओं का निश्चित विधिनुसार ऐसा सम्पादन या अनुपालन है, जिससे इन्हें सम्पादित करने वाले व्यक्ति और पारलौकिक सत्ता के बीच सम्पर्क स्थापित किया जा सकता है। विश्वासों को कर्मकाण्डों का घोषणा पत्र कहा जा सकता है।[1] यह कर्मकाण्डों को युक्तिसंगत बनाते है और इनका अनुपालन सुनिश्चित करते हैं। पूर्व मानवशास्त्रियों के अनुसार धर्म के आदिम स्वरुपों की उत्पत्ति के अनेक कारण थे। जैसे जे0एच0 किंग ने जादू तथा ब्रोसेज और अगस्त कोम्त ने भूत–प्रेतों में विश्वास को इसकी उत्पत्ति का कारण माना है। अगस्त कोम्त ने धर्म की विशेषता के आधार पर इसे एक मौलिक कारक मानते हुए अपने तीन स्तरों के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। तब से सामाजिक चिन्तकों ने इस क्षेत्र में अनेकानेक सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है।

धार्मिक विश्वास में किसी उपासना के विषय के प्रति सम्पूर्ण आत्मबंधन के आधार पर जीवन की समस्याओं की ओर सर्वव्यापक रीति से व्यक्ति को अभिमुख करते हैं।[2] मूलतः धार्मिक विश्वास अतिप्राकृतिक प्राणियों, शक्तियों, स्थानों तथा अन्य वस्तुओं से सम्बन्धित सत्ता या सत्ताओं के अस्तित्व में संवेगात्मक आस्था और उस पर मनुष्य की निर्भरता में निहित है। धार्मिक विश्वास धर्म सम्बन्धी परिधि से सम्बन्धित होते हैं। गैलाबे के अनुसार धर्म वह है जिसमें अपने से परे किसी शक्ति के प्रति मानव श्रद्धा के द्वारा अपनी संवेगात्मक आवश्यकताओं की पूर्ति करके जीवन में स्थिरता प्राप्त करता है और जिस स्थिरता को वह उपासना और सेवा में अभिव्यक्त करता है।[3] धर्म कम या अधिक रुप में अतिप्राकृतिक प्राणियों, शक्तियों, स्थानों और अन्य वस्तुओं से सम्बन्धित विश्वासों एवं रीतियों की संयुक्त प्रणाली है। ऐसी प्रणाली जिसका उसके अनुयायियों के व्यवहार और कल्याण पर प्रभाव पड़ता है। ऐसे प्रभाव जिन्हें अनुयायीगण अपने व्यक्तिगत और सामूहिक जीवन में विभिन्न अंशों में और विभिन्न तरीकों से स्वीकार करते हैं।[4] अतिप्राकृतिक प्राणी (देवी, देवता, देवदूत) होते हैं। अतिप्राकृतिक स्थान (स्वर्ग तथा नरक) होते हैं। अतिप्राकृतिक शक्तियां जैसे आत्माएं होती हैं। यदि किसी वस्तु का अस्तित्व ऐसे किसी प्रमाण पर आधारित न हो और जो विज्ञान के क्षेत्र में स्वीकार न हो, उसे अतिप्राकृतिक कहा जाएगा। इस अर्थ में अतिप्राकृतिक वस्तुएं अनुभावात्मक हैं। इस प्रकार सभी धर्मों की रचना अतिप्राकृतिक के प्रति मानसिक अभिवृद्धि से होती है। इस अभिवृद्धि की सर्वाधिक व्याप्ति अभिव्यक्ति विश्वासों एवं कर्मकाण्डों के रुप में होती है। विश्वास और कर्मकाण्ड सभी धर्मों आदिम या आधुनिक में पाए जाते हैं। विश्वासों को कर्मकाण्डों का घोषण–पत्र कहा जा सकता है। यह कर्मकाण्डों को युक्तिसंगत बनाते हैं और इनका अनुपालन सुनिश्चित करते हैं। धर्मानुयायी धार्मिक विश्वासों को गंभीरता से लेता है। वह उनके प्रति संकल्पित होता है। कुछ अंशों तक वह उसके आचरण पर उनके

पड़ने वाले प्रभाव में रुचि रखता है और वह अपना यह कर्तव्य मानता है कि आचरण करते समय वह इन प्रभावों को उदय में रखें।

जब धार्मिक विश्वास स्थापित हो जाते हैं, तो वे अन्य संस्थाओं की भांति अनुशास्तियों द्वारा समर्पित होते हैं। कभी–कभी तो धर्मद्रोह के लिए दण्ड कठोर होता है, मृत्युदण्ड भी दिया जाता है। अधिकतर तो धर्मद्रोही को धार्मिक समूह से बहिष्कृत कर दिया जाता है। वे धार्मिक विश्वास जिन्हें औपचारिक ढंग से धार्मिक समूह का नियम मान लिया जाता है, धार्मिक समूह कहे जाते हैं। यद्यपि यह सही है कि सभी धार्मिक विश्वास कट्टर नहीं होते।

धार्मिक विश्वासों को सावधानीपूर्वक समझने की आवश्यकता कई कारणों से है।[5] प्रथमतः कई महत्वपूर्ण विश्वास जीवन के ऐसे अंग बन जाते हैं कि लोग स्पष्ट रुप से उल्लेख ही नहीं करते। द्वितीयतः यह बात है कि शब्दों के वहीं रहते हुए भी अर्थ बदल सकते हैं। तृतीयतः यह कि लोगों के जीवन पर धर्म का जो प्रभाव पड़ता है वह सम्पूर्ण स्थिति पर कई अंशों तक निर्भर करता है। चतुर्थतः एक ही धर्म को मानने वाले लोगों में भी असहमति तो होती ही है। अंतिम रुप से धर्म के क्षेत्र में विश्वास शब्द का अर्थ ही स्पष्ट हो जाता है। यह स्पष्ट है कि इस विश्वास की दुनिया गोल है, धार्मिक विश्वास भिन्न होता है। वस्तुतः लोग अपने धार्मिक विश्वासों को अधिक स्पष्टता से अक्सर परिभाषित नहीं करते। ए0डी0 नाक का मत है कि व्यक्ति ऐसी स्थिति बना सकते हैं। जिसमें वे स्वंय से यह प्रश्न नहीं पूछते कि जो वे कर रहें हैं, उसका क्या अर्थ है। इतना होने पर भी शब्दों में व्यक्त धार्मिक विश्वास लोगों के धार्मिक व्यवहार के भावात्मक रुप का महत्वपूर्ण सूचक होते हैं और वे अक्सर हमें समझने में सहायता करते हैं कि किस प्रकार धर्म समस्त व्यवहार को प्रभावित करते हैं।[6]

चूंकि विश्वास संस्कृति का अविभाज्य अंग है। अतः हम किसी सामाजिक समूह का विश्लेषण करने जा रहे हैं अथवा उनके जीवन प्रतिमानों को समझने का प्रयास कर रहे हो, तो यह आवश्यक हो जाता है कि उस समूह का बहुत ही सावधानीपूर्वक अध्ययन किया जाए। प्रत्येक समाज चाहे वे पूर्व साक्षर हो अथवा सभ्य हो उसके अपने विचार, विश्वास एवं दृष्टिकोण होते हैं जो मानव व्यवहार के सामान्य आचरण को प्रभावित करते हैं। वह समाज जो पूर्णतया परम्परा एवं विश्वासों पर आधारित होता है उसके सदस्यों के दृष्टिकोण एवं विचार पूर्णतया कठोर होते हैं। ऐसे विश्वास, दृष्टियों एवं विचार एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित होते रहते हैं। देखने में आया है कि ऐसे परम्परागत स्थानों में अपेक्षाकृत बहुत कम परिवर्तन हुए हैं। अन्य समाजों की भांति मुसहर समाज भी एक परम्परागत समाज माना जाता है। मुसहर समुदाय में भी संस्थापित धार्मिक विश्वास बिना प्रश्न चिह्न के स्वीकार कर लिए जाते हैं। मानव ने आदिकाल से कोई न कोई उपासना या पूजा का विषय अपना रखा है। आर्थर एवेलन[7] के अनुसार देवी वस्तुतः ईश्वर का ही मातृ रुप है। पूजा की लोकप्रियता की दृष्टि से आज हमारे देश में सर्वाधिक मान्यता दुर्गा, काली, लक्ष्मी, सरस्वती इन चार देवियों की है–वैसे सम्पूर्ण भारतवर्ष में प्रचलित देवी आराधना के संदर्भ में देवियों की भरमार है। देवी–दुर्गा, काली, ललिता आदि सहस्र नामों में देवी के कई हजार नाम गिनाये गये हैं। यद्यपि यहाँ वे एक ही देवी के नाम समझे जाते हैं, परन्तु जन–साधारण की मान्यता में उनमे से अधिकांश पृथक रुप में देवियां हैं। आज भी भारत में शीतला, संकटा, गौरी, दुर्गा, लक्ष्मी, काली, चंड़ी, सरस्वती आदि देवियाँ अलग–अलग मानी जाती हैं। कांगड़ा जिला त्रिर्गत में चितपुनी, ज्वाला जी तथा ब्रजेश्वरी देवी के मंदिरों में आश्विनी तथा चैत्र मासों में नवरात्र के दिनों में जिस देवी की पूजा की जाती है, उसको केवल दुर्गा या मातृ देवी के नाम से ही सर्वसाधारण जानता है। अनेक देवी की मान्यता के साथ एक धुंधली सी मान्यता यह भी है कि ये सब एक ही देवी के अनेक रुप हैं। यह देवी अपने भक्त के शरीर को आविष्ट कर उसके माध्यम से प्रायः भूत तथा भविष्य की बातें भी बतलाती हैं तथा लोगों के संकट–निवारण के लिए उपाय सुझाती हुई भी सुनी जाती है। इस समय देवी को किसी नाम–विषेष से अभिहित नहीं किया जाता।

प्रमुख देवियों में दुर्गा, काली, लक्ष्मी और सरस्वती के अनेक रुप प्राप्त होते हैं। इनमें से अष्टभुजा या दशभुजा दुर्गा, सिंहवाहिनी, महिष–मर्दिनी आदि नाम से और चतुर्भुजा, काली, कपालिनी आदि नाम से देवी के भीषण रुप को प्रकट करती है। वीणा–पुस्तक–धारिणी हंसारुढ़ा सर्व शुक्ला सरस्वती देवी के मृदु तथा मधुर रुप की द्योतक है। लक्ष्मी और सरस्वती की क्रमशः धन तथा विद्या के लिए ही उपासना की जाती है। चेचक के निवारण के लिए उत्तर भारत में शीतला और दक्षिण भारत में ज्येष्ठा की पूजा बहुत प्रचलित रही। इसके अतिरिक्त कालीघाट की काली, आसाम की कामाख्या, उड़ीसा की विरजा, मिर्जापुर (उ0प्र0) की विन्यवासिनी, हरिद्वार की चंडी, पंजाब की तथा दक्षिण की कन्याकुमारी देवी का विशेष महत्व है। शाक्तों के अनुसार सारे भारत में देवी के 51 स्थान अत्यन्त पवित्र हैं क्योंकि इन स्थानों पर विष्णु चक्र से खण्डित होकर सती के शरीर खण्ड इतस्ततः जा गिरे थे। मुसहर समुदाय के सदस्य एक ईश्वर पर विश्वास न करके अनेक देवी–देवताओं पर विश्वास करते हैं। यद्यपि देवी–देवताओं का एक सोपान क्रम है। इस सोपानात्मक क्रम में मुसहर समुदाय के सदस्य का कैसा विश्वास है। मुसहर समुदाय के देवी–देवताओं के सोपानात्मक क्रम का आधार या सोपानात्मक क्रम अध्ययन क्षेत्र के अनुसार भिन्न–भिन्न है। सोपानात्मक क्रम के संदर्भ में मुसहरों के मध्य मतैक्यता है। प्रत्युत यह क्षेत्रीय आधार पर निर्भर है। निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि इस समुदाय में हिन्दू धर्म में प्रचलित सभी देवी–देवताओं की पूजा व आराधना की जाती है।

संसार के विभिन्न देशों तथा धर्मो में अवतारवाद धार्मिक नियम के समान आदर और श्रद्धा की दृष्टि से देखा जाता है। पूर्वी और पश्चिमी धर्मो में यह सामान्यतः मान्य तथ्य के रूप में स्वीकृत किया गया है। अवतारवाद की हिन्दू धर्म में विषेष प्रतिष्ठा है। अत्यन्त प्राचीन काल से वर्तमान काल तक यह उस धर्म के आधार भूत मौलिक सिद्धान्तों में अन्यतम है। अवतार का शब्दिक अर्थ है कि भगवान का अपनी स्वतंत्र शक्ति के द्वारा भौतिक जगत में मूर्तरूप से आविर्भाव होना प्रकट होना। अवतार तत्व का द्योतक प्राचीनतम शब्द प्रादुर्भाव है।

उक्त विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि अवतार वस्तुतः परमेश्वर का वह आविर्भाव है जिसमें वह किसी विशेष उद्देश्य को लेकर किसी विशेष रूप में, किसी विशेष देश और काल में लोकों में अवतरण करता है।

हिन्दू धर्म के सभी प्रामाणिक ग्रन्थों रामायण, गीता, वेद, उपनिषद् आदि में अवतारवाद का उल्लेख मिलता है। तुलसी कृत रामचरित मानस से भी अवतारवाद की पुष्टि होती है।

सुनु गिरिजा हरि चरित सुहाए।
विपुल विसद् निगमागम गाए।
हरि अवतार हेतु जेइ होई।
इदमित्यमं कहि जाए न सोई।[8]

इस प्रकार ईश्वर के प्रत्येक अवतार की कथा का वर्णन है–

प्रति अवतार कथा प्रभु केरी।
सुनु मुनि बरनी कविन्ह घनेरी।
नारद श्राप दीन्ह इक बारा।
कलप एक तेहि लगि अवतारा।[9]

त्रेता युग में भी ईश्वर के अवतार का उल्लेख है :–

तेहि अवसर मंजन महि भारा।
हरि रघुवंश लीन्ह अवतारा।[10]

उक्त विवेचन के आधार पर अवतारवाद की पूर्णतः पुष्टि होती है। मुसहर समुदाय के सदस्यों का भी यह दृढ़ विश्वास है कि वास्तव में ईश्वर मनुष्य के रूप में भूतल पर अवतरित होता है।

मानव समाज में कर्म के सिद्धान्त में विश्वास इतने सार्वभौमिक स्थायी और व्यापक हैं कि किसी सिद्धान्त के वषीभूत हो मनुष्य को सद्आचरण से जीवन व्यतीत करने की प्रेरणा मिलती है। कर्म के सिद्धान्तानुसार प्रत्येक मनुष्य को उसके अच्छे–बुरे सभी कार्यो के परिणाम को बिना किसी अपवाद के भुगतना पड़ता है। दर्शन में कर्म एक विषेष अर्थ में प्रयुक्त होता है। जो कुछ मनुष्य करता है उससे कोई फल उत्पन्न होता है। यह फल शुभ, अशुभ अथवा दोनों से भिन्न होता है। फल का यह रूप क्रिया के द्वारा स्थिर होता है।

इतना ही नहीं जब क्रिया का सम्बन्ध फलभोग के साथ माना जाता है– अवश्यंभावी है। उससे बचा नहीं जा सकता, न तो उसको बदला जा सकता है। गोस्वामी तुलसीदास जी की यह चौपाई यहाँ विषेष रूप से दृष्टव्य है–

कर्म प्रधान विश्व करि राखा।
जो जस करहि सो तस फल चाखा।[11]

फल के क्षय का एक मात्र उपाय है उसको भोग लेना। इस जन्म में प्राणी जैसा है वह उसके पूर्वजन्मों की क्रियाओं का फल मात्र है। फल एक शक्ति है, जो जीवन की स्थिति को नियंत्रित करती है। इस शक्ति का पुंज भी कर्म कहा जाता है और कुछ लोग इसे भाग्य का नियति भी कहते हैं।

नियतिवाद में माना गया है कि प्राणी नियति से नियंत्रित है, अतः परवश है। वह स्वयं कुछ नहीं करता परन्तु पूर्वजन्मों की क्रिया का फल भोगने के अलावा यह इस जन्म में स्वतंत्र कर्ता भी है। अतः पूर्व कर्मों को भोगने के साथ ही वह भविष्य के लिए कर्म करता है। इसी में उसका स्वातंत्र है। आचार के लिए स्वतंत्रता परमावश्यक और प्रायः सभी दार्शनिक इसे मानते हैं। क्रिया, क्रियाफल तथा क्रियाफल का समूह जिसे अदृश्य भी कहते हैं, भारतीय दर्शन में कर्म शब्द से अभिहित होता है।

पहले कहा गया है कि मनः प्रेरणा, कर्म का आवश्यक उपकरण है। मनः प्रेरणा के शुभ या अशुभ होने से ही कर्म शुभ या अशुभ होता है।

संदर्भ :

1. Majumdar, D.N. and Madan, T.N. : Introduction to Social Antropology, p. 1974, p. 134
2. "Religious belief provide an all pervasive frame of reference or a focal attitude of arientation to life and induce a total commitment to an object of devotion." W.T. Blackftone : the problem of religions knowledge, A Spectrum book Prentice Hall, 1963, Cham IV (Defining religious belief)
3. G. Galloway : The Philosophy of religion, p. 184
4. H.M. Johnson : Sociology : A Systematic Introduction allied Publisher Pvt.
5. H.M. Johnson : Opcit, p. 400
6. A.D. Noch, Conversion the old and new in religion from Alexandar the great to Augustine of Hippo, Claren-don Press, Oxford, 1933 p. 97.
7. हिम्स टू दि प्रिफेस
8. गोस्वामी तुलसीदास, बालकाण्ड दोहा नं0 129 चौ0 नं 1
9. वही, नं0 123 चौ0 नं0 2 –3
10. वही, दो नं0 60 चौ0 नं0 4
11. श्री गोस्वामी तुलसीदास जी, रामचरित मानस। दोहा नं0 218 का चौ0 नं0 2